

विनीत निवेदन

इस छोटी-सी पुस्तिकामें मनुष्यमात्रके लिये—
विशेषतः हिंदुओंके लिये—जो विशुद्ध जीवन बिताना
चाहते हैं, जानने, धारण करने एवं आचरणमें लाने
योग्य सभी बातें सूत्ररूपसे ग्रथित कर दी गयी हैं। इसमें
लिखी गयी सभी बातें शास्त्रोंपर आधारित ही नहीं, प्रायः
लेखकके जीवनमें उतारी हुई एवं अनुभवकी कसौटीपर
कसी हुई होनेसे अत्यन्त उपादेय एवं लोकहितसे पूर्ण हैं।
मेरा अपना विश्वास है कि इन्हें आचरणमें लानेसे व्यक्ति एवं
समाजका परम मङ्गल निश्चित है। इसमें समाविष्ट तथ्योंका
जितना ही प्रचार-प्रसार होगा, जगत्में उतना ही सुख-
शान्तिका विस्तार होगा। इसमें दिये हुए अमूल्य निर्देश
आजकी भूली हुई एवं पथभ्रष्ट मानवताका उचित मार्गदर्शन
करेंगे और जीवनको परमार्थकी ओर बढ़ानेमें निश्चितरूपसे
सहायक होंगे। विशेषतः भारतीय जनताका, जो अपने
आध्यात्मिक लक्ष्यको और त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियोंके
द्वारा निर्धारित विश्वकल्याणकारी सिद्धान्तोंको भूलकर
पश्चिमके भोगवादके पीछे पागल हो रही है—इससे
महान् उपकार होगा। इसमें जीवनके सभी पहलुओंपर
आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे विचार किया गया है। मेरा
अनुरोध है कि इस पुस्तिकाका देशकी सभी भाषाओंमें

परिचय

अनुवाद होकर जन-जनमें वितरण किया जाय। अन्तमें भगवान्से प्रार्थना है कि वे हम सबको सुबुद्धि दें और सत्पुरुषोंके बताये हुए मार्गपर चलनेकी योग्यता और क्षमता प्रदान करें।

चिम्पनलाल गोस्वामी



परिचय

मेरे प्रति सद्भाव, स्नेह और प्रीति रखनेवाले बहुत-से पुरुष और देवियाँ बार-बार पूछा करते हैं कि 'मेरा आध्यात्मिक सिद्धान्त तथा किस विषयमें क्या विचार है, मैं लोगोंको कैसे विचार तथा आचरणवाले देखना चाहता हूँ। यह स्पष्टरूपसे अलग-अलग बतला दूँ।' यद्यपि मेरे सिद्धान्त या विचार जरा भी नवीन न होकर शास्त्रीय ही हैं, अतएव 'मेरे' सिद्धान्त-विचारके रूपमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है; तथापि सबके स्नेहाग्रहको देखकर मैं यहाँ अपने माने हुए आदर्शप्रिय सिद्धान्त, विचार, आचार, कर्तव्य, बर्ताव, व्यवहार आदि बहुत-से विषयोंपर लिख रहा हूँ। इनमें कई बातें ऐसी होंगी, जिन्हें रुचि तथा विचार-भेदसे या परिस्थितिवश सब नहीं मान सकते।

कुछके सम्बन्धमें विरोधी विचार भी हो सकते हैं, कुछको वर्तमान समयके अनुकूल भी नहीं समझा जा सकता और कुछ बातोंमें अपने विचारानुसार दोष तथा आचरण करनेपर हानि भी प्रतीत हो सकती है पर मैं इसलिये लिख भी नहीं रहा हूँ कि इनको अक्षरशः स्वीकार कर लिया जाय या इन्हें माननेके लिये कोई बाध्य हों। मैं अपने स्नेही सज्जनोंके अनुरोधपर अपने मनके आदर्श सिद्धान्त-विचार लिख रहा हूँ। मानने, आंशिक मानने, सर्वथा न माननेमें सभी स्वतन्त्र हैं। हाँ, मेरी समझसे इसमें लिखी सभी बातें शास्त्रानुमोदित और कल्याणकारिणी होंगी तथा उनके मानने एवं आचरणमें लानेपर भारतीय संस्कृति तथा धर्मके रक्षण एवं क्रियात्मक प्रचारके साथ ही उनको न्यूनाधिकरूपमें लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक लाभ भी निश्चय ही होगा।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—सिद्धान्तकी कुछ बातें	१
२—मनके कार्य	४
३—वाणीके कार्य	५
४—शरीरके कार्य	६
५—दैनिक पालनीय नियम	८
६—दान	९
७—भोजन	१०
८—वस्त्र	११
९—शिक्षा	१२
१०—अर्थकी शुद्धि	१३
११—विवाह	१४
१२—पत्नी-पतिके व्यवहार-धर्म	
(पति)	१५
(पत्नी)	१७
१३—स्त्रीके लिये पालनीय	१८
१४—सदाचार, गृहस्थधर्म, मानवधर्म आदि	२०
१५—दूसरोंकी किस चीजसे बचे	२७
१६—मृतक-कर्म	२८



17. मन को वश में करने के कुछ उपाय

कल्याणकारी आचरण

[जीवनमें पालन करनेयोग्य]

सिद्धान्तकी कुछ बातें—

१—भगवान् एक ही हैं। वे ही निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार हैं। लीलाभेदसे उन एकके ही अनेक नाम, रूप तथा उपासनाके भेद हैं। जगत्के सारे मनुष्य उन एक ही भगवान्की विभिन्न प्रकारसे उपासना करते हैं, ऐसा समझे।

२—मनुष्य-जीवनका एकमात्र साध्य या लक्ष्य मोक्ष, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति ही है, यह दृढ़ निश्चय करके प्रत्येक विचार तथा कार्य इसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर इसीकी सिद्धिके लिये करे।

३—शरीर तथा नाम आत्मा नहीं है। अतः शरीर तथा नाममें 'अहं' भाव न रखकर यह निश्चय रखे कि मैं विनाशी शरीर नहीं, नित्य आत्मा हूँ। उत्पत्ति, विनाश, परिवर्तन शरीर तथा नामके होते हैं—आत्माके कभी नहीं।

४—भगवान्का साकार-सगुणस्वरूप सत्य नित्य

सच्चिदानन्दमय है। उसके रूप, गुण, लीला सभी भगवत्स्वरूप हैं। वह मायाकी वस्तु नहीं है। न वह उत्पत्ति-विनाशशील कोई प्राकृतिक वस्तु है।

५—किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, मतसे द्वेष न करे; किसीकी निन्दा न करे। आवश्यकतानुसार सबका आदर करे। अच्छी बात सभीसे ग्रहण करे पर अपने धर्म तथा अपने इष्टदेवपर अटल, अनन्य श्रद्धा रखकर उसीका सेवन करे।

६—अपने इष्ट तथा अपने साधनको हीन न समझकर अपने लिये उसीको सर्वश्रेष्ठ समझे पर अभिमान करके दूसरोंकी निन्दा कभी न करे। दूसरोंके इष्टदेवको अपने ही इष्टदेवका उनके द्वारा पूजित एक रूप समझे।

७—किसी भी देवताकी, साधनकी निन्दा न करे, किसी भी पूजा-स्थल, मन्दिर, मठ, विहार, उपासना, आश्रम, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिर्जा, अगियारी आदिका असम्मान कभी न करे।

८—जहाँतक बने, तन-मन-धनसे सबकी यथायोग्य सेवा करे। सब प्राणियोंमें भगवान् हैं—यह समझकर

सभीका सम्मान करे, सभीका हित करे और सभीको सुख पहुँचावे। किसीका अपमान-अहित न करे, किसीको दुःख न पहुँचावे।

९—मानवमात्रमें परस्पर प्रेम बढ़े, सभी एक-दूसरेकी सहायता करें, सबका सब हित करें। व्यक्तिगत या दलगत संकुचित स्वार्थकी प्रतिष्ठा न हो, बल्कि विशाल-विश्वमय स्वार्थ हो, ऐसे विचार तथा कार्य करें।

१०—संसारके भोगमात्र अनित्य, अपूर्ण तथा सुखरहित, दुःखालय और दुःखोंके उत्पत्ति-स्थान हैं—ऐसा समझकर उनमें आसक्ति न रखे।

११—अपनी संस्कृति, पूर्वज, शास्त्र, पवित्र स्थान, संस्कृत-भाषा आदिपर श्रद्धा हो और इसमें गौरवका अनुभव करे।

१२—कर्मफलभोगका सिद्धान्त सर्वथा सत्य है। अच्छे-बुरे कर्मका फल इस लोक या परलोकमें भोगना ही पड़ता है। कर्मानुसार स्वर्ग, नरक, देवयोनि, मनुष्ययोनि, पितृयोनि, प्रेतयोनि, कूकर-शूकरादि आसुरी योनियोंमें तथा लोकोंमें आना पड़ता है—यह सब सर्वथा सत्य है।

बीज-फल-न्यायसे लघुकर्मके लंबे फल होते हैं और शास्त्रीय प्रायश्चित्तसे कर्म कटते भी हैं। देवाराधन, ईश्वराराधनसे नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है।

१३—वर्तमान निषिद्ध कर्म करनेवाला पूर्व-प्रारब्धानुसार सुखी देखा जा सकता है। वर्तमान कर्मका फल उसे भविष्यमें मिलेगा। इसी प्रकार वर्तमानमें सत्कर्म करनेवाला पिछले पापोंके प्रारब्धवश दुःखी देखा जा सकता है। इस सत्कर्मका फल उसे आगे मिलेगा पर यह निश्चित है कि बुरे कर्मका अच्छा फल और अच्छे कर्मका बुरा फल नहीं हो सकता।

१४—तत्त्वज्ञान तथा भगवच्छरणागतिसे समस्त कर्मराशि भस्म हो जाती है।



मनके कार्य

१—कभी किसीका बुरा न चाहे, बुरा होता देखकर प्रसन्न न हो।

२—व्यर्थ-चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ आदिके निमित्तसे चिन्तन न करे।

- ३—किसीकी कभी हिंसा न करे।
 ४—भगवान्की कृपापर विश्वास रखे। भगवान्का चिन्तन करे। उनकी लीला, नाम, गुण, तत्त्वका चिन्तन करे। संतोंके चरित्रोंका, उनके उपदेशोंका चिन्तन करे।
 ५—विषयोंका चिन्तन न करके भगवान्का चिन्तन करे।
 ६—पुरुष स्त्री-चिन्तन और स्त्री पुरुष-चिन्तन न करे।
 ७—नास्तिक, अधर्मी, अनाचारी, अत्याचारी तथा उनकी क्रियाओंका चिन्तन न करे।



वाणीके कार्य

- १—किसीकी निन्दा-चुगली न करे। यथासाध्य परचर्चा करे ही नहीं। किसीकी भी व्यर्थ आलोचना न करे।
 २—झूठ न बोले।
 ३—कटु शब्द, अपशब्द न बोले। किसीका अपमान न करे। किसीको शाप न दे। अश्लील शब्दका उच्चारण न करे।
 ४—नम्रतायुक्त मधुर वचन बोले।

- ५—हितकारक वचन बोले । किसीका अहित न करे ।
 ६—व्यर्थ न बोले । अभिमानके वाक्य न बोले ।
 ७—भगवद्गुण-कथन, शास्त्रपठन, नामकीर्तन, नामजप करे । पवित्र पद-गान करे ।
 ८—अपनी प्रशंसा कभी न करे ।
 ९—जिसमें गौ-ब्राह्मणकी, गरीबकी या किसीके भी हितकी हानि होती हो, ऐसी बात न बोले ।
 १०—आवश्यकता होनेपर दूसरोंकी सच्ची प्रशंसा भले ही करे । किसीकी भी व्यर्थ खुशामद न करे ।
 ११—गम्भीर विषयोंपर विचारके समय विनोद न करे । ऐसा हँसी-मजाक न करे, जो दूसरोंको बुरा लगे या जिससे किसीका अहित होता हो । व्यर्थ हँसी-मजाक तो करे ही नहीं । हँसी-मजाकमें भी अश्लील शब्दका प्रयोग न करे ।



शरीरके कार्य—

- १—किसी प्राणीकी हिंसा न करे । किसीको मारे-पीटे नहीं ।
 २—अनाचार-व्यभिचार न करे ।

- ३—सबकी यथायोग्य सेवा करे।
- ४—अपना काम अपने हाथसे करे।
- ५—गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणाम करे।
- ६—पवित्र स्थानोंमें, तीर्थोंमें, सत्सङ्गोंमें संतोके दर्शन हेतु जाय।
- ७—मिट्टी, जल आदिसे पवित्र रखे। शुद्ध जलमें स्नान करे।
- ८—पाखानेमें, टबमें बैठकर, नंगा होकर स्नान न करे।
- ९—मल-त्यागके लिये बाहर जाय तो नदी या तालाब आदिके किनारे, रास्ते आदिमें मल-त्याग न करे। मलपर मिट्टी, बालू आदि डाल दे, जिससे दुर्गन्ध न फैले और उसकी खाद बन जाय।
- १०—मल-मूत्रका त्याग करके हाथ धोये, कुल्ला करे।
- ११—खड़ा होकर पेशाब न करे।
- १२—जहाँ-तहाँ थूके नहीं; अपवित्र, दूषित पदार्थोंका स्पर्श न करे।

१३—रोगकी जहाँतक हो आयुर्वेदिक चिकित्सा कराये।

१४—देशी दवाइयोंमें भी तथा आवश्यक होनेपर एलोपैथिक आदि दवा सेवन करनी पड़े तो उनमें भी, जिनमें कोई जान्तव पदार्थ हो, उनका प्रयोग बिलकुल ही न करे। प्राकृतिक चिकित्सापर, खान-पानके संयम आदिपर विशेष ध्यान रखे। रामनामकी दवा ले।



दैनिक पालनीय नियम

१—सूर्योदयसे पहले उठे।

२—उठकर भगवान्‌का स्मरण करे तथा बड़ोंको प्रणाम करे।

३—जिसके यज्ञोपवीत हो, वह कम-से-कम दो कालकी संध्या और एक माला गायत्रीका जप यथाधिकार अवश्य करे। सम्भव हो तो तर्पण भी करे। सभी लोग विश्वासपूर्वक प्रतिदिन नियमित भगवत्प्रार्थना करें।

४—भगवान्‌के नामका जप अधिक-से-अधिक करे। कम-से-कम २१,६०० नामका जप अवश्य कर ले।

५—उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, भगवद्गीता तथा अपने-अपने धर्मग्रन्थ आदिका यथायोग्य नित्य पाठ—अध्ययन करे। विचार तथा जीवनको सात्त्विक बनानेवाले अन्यान्य विविध सद्ग्रन्थोंका पाठ—स्वाध्याय करे।



दान—

- १—कुछ-न-कुछ प्रतिदिन दान करे।
- २—जिसे, जहाँ, जब, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे, वहाँ, उस समय, वह वस्तु अपने पास हो तो दे दे।
- ३—दान सम्मानपूर्वक करे, अवज्ञापूर्वक नहीं।
- ४—भगवान्की वस्तु भगवान्की सेवामें लगी, यह समझे, न अभिमान करे, न दान लेनेवालेपर अहसान करे, न उसका लोक-परलोकमें फल चाहे, न बदला चाहे।
- ५—दान यदि गुप्तरूपसे हो तो सर्वोत्तम है।
- ६—तीर्थमें, पर्वके समय, पुण्य तिथियोंपर, माता-पितादिके श्राद्धके दिन भी दान करे।
- ७—धन, जमीन, अन्न, वस्त्र, जल, दवा, सत्परामर्श,

आश्रय, अभय, मधुर वचन, मार्गदर्शन—जिसके पास जो हो, जितने परिमाणमें हो—वह उतने ही परिमाणमें आवश्यकतानुसार नम्रता तथा सम्मानके साथ दान करे।



भोजन—

१—सदा, सात्विक, सहजमें पचनेवाला करे, कम करे; भूखसे ज्यादा कभी न खाय। अच्छी तरह चबाकर खाय।

२—प्याज, लहसुन तथा उत्तेजक तामस वस्तु न खाय। मसाला कम-से-कम खाय। नशीली चीज न खाये-पीये।

३—किसीकी जूठन कभी न खाये-पीये।

४—भोजन स्वास्थ्य-रक्षा तथा पवित्र मनके निर्माणके लिये करे, स्वादके लिये नहीं।

५—माँस, मछली, शराब, अंडा आदिका सेवन कभी भी, किसी भी रूपमें न करे।

६—जहाँ माँस पकता हो, वहाँ पका हुआ भोजन न करे।

७—सात्विक, सदाचारी पुरुष, माता, पत्नी आदिके हाथका भोजन सर्वोत्तम है।

८—हर किसीके यहाँ तथा हर किसीके हाथका एवं प्रत्येक होटलमें भोजन न करे।

९—काँचके, चीनी-मिट्टीके बरतनमें न खाये-पीये। बिना मँजे-धोये बरतनोंमें न खाये-पीये।

१०—स्वास्थ्यनाशक चाट, बाजारू पदार्थ, आइसक्रीम आदिका सेवन न करे।

११—बीमारीकी स्थितिको छोड़कर स्नान किये बिना कुछ भी न खाये-पीये।

१२—बीच-बीचमें व्रतोपवास अवश्य करता रहे। व्रतके दिन फलाहार आदि करे, बढ़िया आहार न करे।

१३—भोजनके पहले हाथ-मुँह धोवे। भोजनके पश्चात् मुख-प्रक्षालन करे, कुल्ला करे, हाथ धोये। जूठा हाथ अवश्य धो ले।

—★—

वस्त्र—

१—कम-से-कम पहने।

२—सादे, स्वच्छ, कम कीमतके व्यवहार करे; जहाँतक बने, हाथसे कते सूतके हाथसे बुने कपड़ेका

व्यवहार करे।

३—भड़कीले, फैशनदार, अधिक कीमतके न पहने।

४—अधिक संग्रह न करे।

५—लज्जारक्षा, शीत-ग्रीष्म आदिसे रक्षाके लिये कपड़े पहने, शौकीनी तथा दिखावेके लिये नहीं।

६—जिनमें हिंसा होती हो वैसे कपड़े न पहने।

७—देशी ढंगके कपड़े पहने, विदेशी ढंगके नहीं।



शिक्षा—

१—शिक्षामें धर्म, सदाचार, मानवधर्म, नीति, संयम तथा सर्वहितभावकी शिक्षा अवश्य रहे।

२—लड़के-लड़कियोंको एक साथ न पढ़ाया जाय। सहशिक्षा न हो। ऐसे शिक्षालयोंमें बच्चोंको न भेजे।

३—जहाँ केवल विदेशी भावोंकी शिक्षा एवं आचार सिखाये जाते हों, उनमें बच्चोंको न भेजे।

४—बच्चे माता-पिताको नित्य प्रणाम करें, उन्हें माताजी, अम्माजी, पिताजी, बाबूजी आदि कहें; 'मम्मी', 'डैडी', 'पापा' आदि न कहें।

५—आजकलके दूर-दूरके छात्राश्रमोंमें बच्चोंको भेजना बहुत हानिकर है। वहाँ अधिकांशमें अनीति, उच्छृङ्खलता, असदाचार, नास्तिकता, खान-पान, विवाह आदिमें किसी विधि-निषेधको न मानने, गुरुजनोंका अनादर करने तथा यथेच्छाचारी बननेकी ही शिक्षा मिलती है।

—★—

अर्थकी शुद्धि—

१—चोरी-ठगी न करे। व्यापारमें, नौकरी, दलाली, अफसरी, मजदूरी आदि सभीमें सचाई तथा ईमानदारीका सदा ध्यान रखे।

२—वस्तुओंमें मिलावट न करे। तौलमें कम न दे, अधिक न ले।

३—दूसरेका हक न ले, पराये धनको विषके समान समझे।

४—सत्य-न्यायसे शुद्ध कमाई करे।

५—कमाई अधिक हो तो उसे मौज-शौकमें, विवाह आदिके अवसरोंपर आडम्बरमें, सैर-सपाटेमें तथा व्यर्थकी सजावट-बनावटमें न खर्च करके गरीबोंकी

सेवामें लगावे। उसे गरीबोंकी सम्पत्ति समझे।

६—पैसेका लोभ कभी न करे।

७—संग्रहकी अपेक्षा त्यागको अधिक महत्त्व दे।

८—अपने जिम्मेका काम जिम्मेवारी, सचाई, बुद्धिमानीके साथ पूरा समय देकर सम्पादन करे।

९—जिसमें हिंसा होती हो ऐसी किसी वस्तुका, चमड़ा, खानेकी चीज, मांस-मेद, हड्डी-मज्जा आदिका तथा शराब आदिका व्यापार कभी न करे।



विवाह—

१—लड़की-लड़के अपने लिये अपने मनसे वर-कन्याका चुनाव न करें। यथासाध्य माता-पिता, अभिभावकों तथा शुभचिन्तक अनुभवी पुरुषोंकी अनुमतिसे करें।

२—विवाहको पवित्र धार्मिक संस्कार माने।

३—असवर्ण विवाह न करे। परधर्ममें विवाह न करे। विजातीय विवाह न करे।

४—शास्त्रविधिसे विवाह किया जाय। रजिस्ट्रेशन

आदिसे नहीं।

५—विवाहमें कम-से-कम खर्च किया जाय। सजावट-आडम्बर आदि न करे, खान-पानमें अधिक व्यय न करे। सादगी बरते।

६—विवाहके बाद तुरंत ही विदेशी प्रथाके अनुसार पति-पत्नी पहाड़ आदिपर आनन्द मनानेके लिये न जायँ।

७—विवाह होनेके बाद तलाककी कल्पनाको भी पाप समझे।

— ★ —

पति-पत्नीके व्यवहार-धर्म—

[पति]

१—पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरेको पूरक तथा एक-दूसरेका अर्धाङ्ग समझे। छोटा-बड़ा नहीं।

२—पति अपनेको ईश्वर मानकर पत्नीको दासी या गुलाम कभी न समझे।

३—उसका उचित आदर-सम्मान करे। उससे सच्चे अर्थमें प्रेम करे। उसकी उचित माँगोंको अपने घरकी स्थितिके अनुसार यथाशक्ति सादर पूर्ण करे।

४—पत्नीके साथ कभी रूखा, कटु व्यवहार मन-तन-वाणीसे न करे।

५—पत्नीको कभी न मारे। यह महापाप है।

६—पत्नीको प्रेमभरे शब्दमें सत्-शिक्षा देता रहे। अपने उत्तम सदाचरण तथा सद्व्यवहारसे उसे संतुष्ट तथा सदाचारपरायण रखे।

७—गंदी पुस्तकें न स्वयं पढ़े। पत्नी पढ़ती हो तो उसे समझाकर रोक दे।

८—स्वयं फैशनसे दूर रहकर पत्नीको फैशनमें न जाने दे, मधुरतापूर्वक समझाकर।

९—परस्त्रियोंके पास न जाय। डांस न करे। पत्नीको भी समझाकर उसे पर-पुरुषोंके साथ डांस न करने दे।

१०—जहाँ अश्लील, असदाचार तथा भ्रष्ट खानपान होता हो—ऐसे स्थानोंमें न स्वयं जाय, न पत्नीको जाने दे, न दोनों साथ जायँ।

११—पत्नीके माता-पिता-भाई आदिकी निन्दा न करे।

१२—पत्नी बीमार हो तो उसकी अपने हाथों सब

तरहकी सेवा भलीभाँति करे।

[पत्नी]

१—पत्नी पतिको ही परमेश्वर, परम गुरु तथा परम पूजनीय समझकर उसकी तन-मन-धनसे—सच्चे हृदयसे हर तरहकी सेवा करे।

२—किसी पर-पुरुषको गुरु न बनाये। किसी पर-पुरुषका स्पर्श न करे।

३—किसी पर-पुरुषसे एकान्तमें न मिले।

४—पतिके साथ सदा नम्रताका, विनयभरा, मधुर बर्ताव करे। कभी रूखे—कड़े शब्दोंका प्रयोग न करे। पतिका कभी अपमान न करे।

५—पतिकी उचित सेवाके लिये पहलेसे तैयारी रखे, जिससे उन्हें प्रतीक्षा न करनी पड़े। पतिकी सेवामें अपना सौभाग्य समझे।

६—पतिसे कभी छल-कपटका व्यवहार न करे।

७—घरकी स्थितिसे विरुद्ध पतिसे माँग न करे।

८—पतिके माता-पिता-भाई आदिकी बुराई न करे।

९—पर-पुरुषोंके साथ डांस न करे। मर्यादानाशक स्थानोंमें न जाय।

१०—सिनेमा आदिमें न जाय तथा पतिको भी समझाकर न जाने दे।

११—कृत्रिम उपायोंसे गर्भनिरोध न करे। गर्भपात न करावे।

१२—गंदा साहित्य न पढ़े। गंदे चित्र न देखे।



स्त्रीके लिये पालनीय—

१—स्त्रीका महत्त्व तथा गौरव 'सफल गृहिणी' और 'माता' बननेमें है—क्लर्क, प्रोफेसर, वकील, मजिस्ट्रेट, मन्त्री आदि बननेमें नहीं। परिस्थितिवश नौकरी किये बिना काम न चले तो दूसरी बात है पर यथासाध्य अध्यापकीका ही कार्य करे।

२—पुरुषोंके क्षेत्रमें जाकर अपने गौरवसे गिरे नहीं। पर्दा नहीं पर स्त्रियोचित शोभनीय लज्जा अवश्य रखे।

३—फैशन स्वीकार न करे। अकेली सैर-सपाटेमें या सहेलियोंके साथ क्लबों, होटलोंमें न जाय।

४—विलायती ढंगके लंबे नख न रखे।
नखों-होंठोंको रंगे नहीं।

५—पर-पुरुषसे हर हालतमें बचे, चाहे गुरुजन ही
हों। किसीका स्पर्श न करे।

६—कम कीमतकी शुद्ध सादी पोशाक पहने, साड़ीका
व्यवहार करे। साड़ीके नीचे लहंगा अवश्य रखे।

७—चमकीली-भड़कीली फैशनकी आकर्षक पोशाक
न पहने। देशी ढंगके वस्त्र पहने, विदेशी ढंगके नहीं।

८—चुस्त कपड़े न पहने। सारे अङ्ग ढके रहें, ऐसे
कपड़े पहने। बड़ी लड़कियाँ जाँघिया तथा फ्राक न पहनें।

९—सिरपर नकली जूड़ा न रखे; न पुरुषोंकी भाँति
केश कटवावे।

१०—गहने भी कम-से-कम पहने। गहने ऐसे बनाये
जायँ, जो जल्दी-जल्दी टूटें नहीं, जिनमें बनवाईके पैसे कम
लगेँ और समयपर तुरंत बिक सकें तथा घाटा न लगे।

११—घरकी चीजोंकी सँभाल, उनका यथायोग्य
व्यवहार, बच्चोंका पालन-पोषण आदि सावधानीसे करे।

१२—मासिकधर्म (रजस्वला)के समय तीन दिन

किसी पवित्र वस्तुका, खान-पानके पदार्थोंका, किसी व्यक्तिका स्पर्श न करे। चौथे दिन स्नान करनेके बाद स्पर्श करे।



सदाचार, गृहस्थधर्म, मानवधर्म आदि—

- १—दूसरेकी उन्नतिसे प्रसन्न हो, डाह-ईर्ष्या न करे।
- २—किसीकी भूल, पतन या असफलतापर उसे देखकर हँसे नहीं।
- ३—किसीको भी गिरानेमें सहायक न बने, उठानेमें बने।
- ४—दूसरेके अधिकारकी रक्षा करे, अपने अधिकारको छोड़ दे। दूसरेके लिये उदार बने, अपने लिये कंजूस बने। दूसरेकी आशाको यथासाध्य पूर्ण करे, स्वयं किसीसे आशा न रखे पर यह सब करके कभी अभिमान न करे।
- ५—दूसरोंके साथ वैसा ही बर्ताव करे, जैसा

दूसरोंसे स्वयं चाहता है। दूसरेसे वैसा बर्ताव कभी न करे, जैसा वह दूसरेसे नहीं चाहता।

६—अपनी सुख-सुविधाको दुःखियों तथा दीनोंसे ली हुई उधार समझे और सम्मानपूर्वक उसे व्याजसमेत लौटाता रहे।

७—अपनी उतनी ही सम्पत्तिपर अपना हक समझे, जितनेसे सादगीसे जीवन-निर्वाह हो सके।

८—सबकी सेवा करके बचा हुआ ही खाय ! उसीसे पाप नाश होते हैं।

९—प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिको, जो फलरूपमें मिली है, भगवान्‌का मङ्गल-विधान मानकर प्रसन्न रहे। उसीमें अपना मङ्गल समझकर अनुकूलताका अनुभव करे—जैसे ऑपरेशनकी पीड़ामें रोगी अनुकूलताका अनुभव करता है। दर्द होनेपर भी सुखी रहता है।

१०—दूसरेके छिद्रोंको प्रकट न करे, ढके।

११—जिससे जहाँतक बने, सदाचारका पालन तथा सदाचारके प्रचारमें सहायता करे। असदाचारका कभी सेवन, समर्थन-सहयोग न करे।

१२—जहाँतक बने, अपना काम अपने हाथसे करे ।

१३—जहाँतक बने, अपनी आवश्यकता कम-से-कम रखे ।

१४—रोगमें, विपत्तिमें, व्यापारमें, भजनमें निराशाकी बात न सोचकर, सदा आशाकी सोचे । यथाशक्ति, यथायोग्य सत्कर्म करता रहे ।

१५—सत्-शास्त्रों, अवतारों, ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं, तीर्थों, मन्दिरोंकी पूजा-अर्चनापर श्रद्धा रखे ।

१६—सभी युगोंके तथा सभी धर्मोंके संतोंका आदर करे; उनके जीवनकी उच्च शिक्षाओंसे लाभ उठावे ।

१७—मेरे प्रारब्धके बिना मेरा बुरा या भला कोई कर नहीं सकता, इसलिये कोई बुरा करता दीखे या अपने बुरेमें किसीका हाथ दीखे तो यह समझे कि मेरा बुरा तो मेरे अपने कर्मफलके रूपमें ही हुआ है, बुरा चाहने-करनेवाला तो निमित्त है पर उसने नया बुरा कर्म करके अपना बुरा कर लिया है, यह समझकर उसे क्षमा करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना करे, द्वेष न करे । उसका बुरा न चाहे ।

१८—भला होनेमें जो व्यक्ति निमित्त बना है, उसने अवश्य मेरी भलाई चाही है। इसलिये उसका उपकार माने।

१९—वस्तुओंका संग्रह कम-से-कम करे। वितरण करे।

२०—आरामतलब, आलसी, परमुखापेक्षी न बने। परिश्रमी, कर्मशील, स्वाश्रयी बने।

२१—किसी प्रकारका नशा तो करे ही नहीं; गाँजा, चरस, भाँग आदिका सेवन न करे। बीड़ी, सिगरेट, जर्दा, तम्बाकू भी न खाये-पीये। चाय भी यथासाध्य न पीये। सोडा, लेमनेड, कोकाकोला आदिसे भी बचे।

२२—आर्यजातिके चिह्न शिखा (चोटी) को आदर तथा गौरवकी वस्तु मानकर अवश्य रखे।

२३—दुःख-संकट—विपत्तिमें धैर्य-धर्मका त्याग न करके उसे भगवान्का मङ्गल-विधान मानकर ग्रहण करे और विश्वासपूर्वक भगवत्प्रार्थना करता रहे।

२४—बच्चोंको श्रमशील, सदाचारी, ईश्वरभक्त, दयालु, कर्मपरायण, उत्साही, कर्मतत्पर, विनयी,

मधुरभाषी, त्याग-प्रेमी, सादा तथा पवित्र जीवनवाले, मितव्ययी, पुरुषार्थी, मेधावी, आत्मनिर्भर, सच्चे, ईमानदार बनानेके लिये आरम्भसे ही माता-पिता आदि अभिभावक स्वयं वैसे आचरण करें तथा शिक्षा, उपदेश, क्रिया और आचरणके द्वारा उनका ऐसा ही जीवन-निर्माण करें। उन्हें प्रमादी, आलसी, क्रोधी, अभिमानी, व्यर्थ खर्च करनेवाले, परनिर्भर, मिथ्यावादी, असदाचारी, नास्तिक, भोगपरायण, चटोरे, कर्म-विमुख, उद्दण्ड, कटुभाषी और मूर्ख न बनावे।

२५—होटलों, क्लबों, नृत्यगृहों, सिनेमामें और जहाँ उच्छृङ्खलरूपसे खान-पान, आमोद-प्रमोदके नामपर अनाचार होता हो, वहाँ न जाय। न बच्चोंको ले जाय।

२६—गरीबोंकी सुख-सुविधाका सदा ध्यान रखे। सभीको रहनेके लिये स्थान, अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा आदि समुचितरूपसे सुलभतासे मिले, इसके प्रयत्न करे।

२७—जहाँ दुर्भिक्ष, बाढ़, महामारी, भूकम्प, वज्रपात, अग्निदाह, दंगे-फसाद आदि दैवी प्रकोपोंसे पीड़ित प्राणी एवं जहाँ प्रारब्धवश अर्थ, वस्त्र तथा

आश्रयहीन हमारे-ही-जैसे मानव तथा इतर प्राणी, विधवा बहिनें, दीन असहाय विद्यार्थी, अनाथ बालक, रोगपीड़ित तथा विपत्तिमें फँसे नर-नारी विभिन्न प्रकारसे अभावग्रस्त हों, वहाँ मानो उन अभावग्रस्तोंके रूपमें भगवान् ही हमारे सामने उपस्थित हैं—यों समझकर उनके अभावकी पूर्तिके लिये, जिसके पास जो कुछ हो उसे, उन्हींकी वस्तु मानकर, अभिमानशून्य विनम्रभावसे इसे अपना ही परम तथा चरम स्वार्थ समझकर निष्काम पूजाके भावसे उनकी सेवामें सम्मानपूर्वक समर्पण कर दे।

२८—कुटुम्बके असमर्थ जनोंका यथाशक्ति आदरपूर्वक भरण-पोषण करे।

२९—माता-पिताकी सब प्रकारसे सेवा करे। इसमें अपना सौभाग्य समझे ! बीमारीकी अवस्थामें नौकरों-दाइयोंपर ही न छोड़कर यथासाध्य अपने हाथोंसे उनकी सेवा करे।

३०—घरमें सब प्रकारसे सादगी रखे, ज्यादा फरनीचर न रखे, विलासिताकी चीजें न संग्रह करे, सजावट—डेकोरेशन आदि न करे-करावे। अपनेको

आरामकी चीजोंसे बचाये रखे।

३१—गौका पालन, संरक्षण तथा संवर्धन हो, इसके लिये यथासाध्य तन-मन-धनसे यत्न करे।

३२—प्राणिमात्रकी हिंसासे बचे। ऐसे किसी व्यक्तिका, कार्यका अथवा कसाई-खानेका, प्रयोगशाला आदिका न समर्थन करे, न सहयोग करे, जहाँ प्राणि-हिंसा होती हो।

३३—विधवा बहिनका कभी अपमान न करे, उसका संन्यासीकी भाँति आदर करे; उसके शील तथा धनका संरक्षण करे। उसे दुःखी और पतित न होने दे।

३४—राष्ट्र, देश या धर्म आदिकी भक्ति तथा सेवाका अर्थ है—राष्ट्र, देश या धर्मके साथ सर्वथा तादात्म्य हो जाना। व्यक्तिका अलग स्वार्थ रहे ही नहीं। वह जिसकी सेवा-भक्ति करना चाहता हो, स्वयं उसीमें समा जाय।



दूसरोंकी किस चीजसे बचे—

- १—दूसरोंके पहने हुए कपड़े, धोती आदि न पहने ।
- २—दूसरोंके अंगोछेसे शरीर न पोंछे ।
- ३—दूसरोंके बिछौनेपर न सोये ।
- ४—दूसरोंके आसनपर बैठकर जप-स्वाध्यायादि न करे ।
- ५—दूसरोंकी मालासे जप न करे ।
- ६—दूसरोंकी जूठी थाली आदिमें न खाय ।
किसीकी भी जूठन न खाय ।
- ७—दूसरोंके दोषोंकी ओर दृष्टिपात न करे ! दृष्टि पड़ जाय तो न किसीसे कहे, न चिन्तन करे ।
- ८—दूसरोंके हकका एक पैसा भी कभी न ले, न लेनेकी इच्छा ही करे ।
- ९—दूसरोंके सुख और मान-प्रतिष्ठाको छीननेका कभी मन या प्रयत्न न करे ।



मृतक-कर्म—

- १—मृतक प्राणीका अन्त्येष्टि-संस्कार विधिवत् करे ।
- २—उसके लिये शास्त्रोक्त पिण्डदान, तर्पण, श्राद्धादि अवश्य करे । उसके निमित्त अन्न, वस्त्र, जल, भूमि, जूता, छाता आदि दान करे ।
- ३—सम्भव हो तो गोदान करे ।
- ४—जिनके यहाँ तर्पण-श्राद्धादि कर्म नहीं होते, वे कम-से-कम अन्न, वस्त्र, जल, जूता, छाता अवश्य दान करें ।
- ५—मृतक प्राणीकी सद्गतिके लिये भगवत्प्रार्थना, भगवन्नाम-कीर्तन, गीता-पाठ, गायत्री-जप करे-करावे ।
- ६—हो सके तो मूल श्रीमद्भागवत-सप्ताह-पारायण तथा विष्णुसहस्रनामके पाठ करे-करावे ।

। अत्रक त्वात्तु श्रुतिं विमलमस्मीति तत् प्रमाण—१

॥ श्रीहरिः ॥

मनको वश करनेके कुछ उपाय

१—इस लोक और परलोकके सारे भोगोंमें दुःख और दोष देखते हुए उनसे वितृष्ण होना ।

२—नियमानुवर्तिताका पालन करना, सारे कार्य नियमितरूपसे करना ।

३—मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करते हुए उसे बुरे चिन्तनसे बचाना ।

४—मनके कहनेमें नहीं चलना ।

५—मनको सर्वदा सत्कार्यमें लगाये रखना ।

६—जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँसे हटाकर परमात्तामें लगाना अथवा सर्वत्र परमात्ताकी भावना करते हुए मनको जहाँ-कहीं भी जाने देना ।

७—एक तत्त्वका अभ्यास करना ।

- ८—नाभि या नासिकाग्रमें दृष्टि स्थापन करना ।
- ९—शब्द श्रवण करना ।
- १०—भगवान्‌के नाम या मूर्तिका ध्यान और मानसिक पूजा करना ।
- ११—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-व्रत पालना ।
- १२—परमार्थ-ग्रन्थोंका अध्ययन करना ।
- १३—प्राणायाम करना ।
- १४—श्वासके द्वारा नामका जप करना ।
- १५—अनन्य मनसे भगवान्‌के शरण होना ।
- १६—मनसे अलग होकर उसके कार्योंको देखना ।
- १७—प्रेमपूर्वक भगवन्नाम-कीर्तन करना ।



मनको वश करनेके कुछ उपाय*

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

(गीता ६।३६)

श्रीभगवान् कहते हैं—जिनका मन वशमें नहीं है उनके लिये योगका प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह मेरा मत है, परन्तु मनको वशमें किये हुए प्रयत्नशील पुरुष साधनद्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण महाराजके इन वचनोंके अनुसार यह सिद्ध होता है कि मनको वश किये बिना परमात्माके प्राप्तिरूप योग दुष्प्राय है, यदि कोई ऐसा चाहे कि मन तो अपने इच्छानुसार निरंकुश होकर विषयवाटिकामें स्वच्छन्द विचरण किया करे और परमात्माके दर्शन अपने-आप ही हो जायँ, तो

* इस पुस्तकमें जितने उपाय बतलाये गये हैं वे सभी किसी-न-किसी ऊँचे साधक या महात्मा पुरुषके द्वारा अनुभूत हैं।

वह उसकी भूल है। दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति और आनन्दमय परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालेको मन वशमें करना ही पड़ेगा, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। परंतु मन स्वभावसे ही बड़ा चञ्चल और बलवान् है, इसे वशमें करना कोई साधारण बात नहीं है। सारे साधन इसीको वश करनेके लिये किये जाते हैं, इसपर विजय मिलते ही मानो विश्वपर विजय मिल जाती है। भगवान् शंकराचार्यने कहा है—‘जितं जगत् केन, मनो हि येन।’ ‘जगत्को किसने जीता ? — जिसने मनको जीत लिया।’ अर्जुनने भी मनको वशमें करना कठिन समझकर कातर शब्दोंमें भगवान्से यही कहा—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दुढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

(गीता ६। ३४)

‘हे भगवन् ! यह मन बड़ा ही चञ्चल, हठीला, दृढ़ और बलवान् है, इसे रोकना मैं तो वायुके रोकनेके समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ।’

इससे किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि जो बात अर्जुनके लिये इतनी कठिन थी, वह हमलोगोंके लिये कैसे सम्भव होगी ? मनको जीतना कठिन अवश्य है, भगवान्ने इस बातको स्वीकार किया, पर साथ ही उपाय भी बतला दिया—
 असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
 अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

(गीता ६।३५)

भगवान्ने कहा, अर्जुन ! इसमें कोई संदेह नहीं कि इस चञ्चल मनका निग्रह करना बड़ा ही कठिन है; परन्तु अभ्यास और वैराग्यसे यह वशमें हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि मनका वशमें करना कठिन भले हो, पर असम्भव नहीं और इसको वश किये बिना दुःखोंकी निवृत्ति नहीं। अतएव इसे वश करना ही चाहिये, इसके लिये सबसे पहले इसका साधारण स्वरूप और स्वभाव जाननेकी

मनका स्वरूप

मन क्या पदार्थ है ? यह आत्म और अनात्म-पदार्थके बीचमें रहनेवाली एक विलक्षण वस्तु है, यह स्वयं अनात्म और जड है, किंतु बन्ध और मोक्ष इसीके अधीन हैं—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

‘बस, मन ही जगत् है, मन नहीं तो जगत् नहीं ! मन विकारी है, इसका कार्य संकल्प-विकल्प करना है । यह जिस पदार्थको भलीभाँति ग्रहण करता है, स्वयं भी तदाकार बन जाता है । यह रागके साथ ही चलता है, सारे अनर्थोंकी उत्पत्ति रागसे होती है, राग न हो तो मन प्रपञ्चोंकी ओर न जाय । किसी भी विषयमें गुण और सौन्दर्य देखकर उसमें राग होता है, इसीसे मन उस विषयमें प्रवृत्त होता है, परंतु जिस विषयमें इसे दुःख और दोष दीख पड़ते हैं उससे इसका द्वेष हो जाता है, फिर यह उसमें प्रवृत्त नहीं होता; यदि कभी भूलकर प्रवृत्त हो भी जाता है तो उसमें अलग

तत्काल लौट आता है, वास्तवमें द्वेषवाले विषयमें भी इसकी प्रवृत्ति रागसे ही होती है। साधारणतया यही मनका स्वरूप और स्वभाव है। अब सोचना यह है कि यह वशमें क्योंकर हो ? इसके लिये उपाय भगवान्ने बतला ही दिया है—अभ्यास और वैराग्य। यही उपाय योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलिने बतलाया है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां

तन्निरोधः ।

(समाधिपाद १२)

अभ्यास और वैराग्यसे ही चित्तका निरोध होता है, अतएव अब इसी अभ्यास और वैराग्यपर विचार करना चाहिये।

वशमें करनेके साधन

(१) भोगोंमें वैराग्य

जबतक संसारकी वस्तुएँ सुन्दर और सुखप्रद मालूम होती हैं तभीतक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त और दुःखप्रद दीखने लगें (जैसे वस्तुमें ये हैं) तो मन कदापि इनमें नहीं लगेगा।

यदि कभी इनकी ओर गया भी तो उसी समय वापस लौट आवेगा; इसलिये संसारके सारे पदार्थोंमें (चाहे वे इहलौकिक हों या पारलौकिक) दुःख और दोषकी प्रत्यक्ष भावना करनी चाहिये। ऐसा दृढ़ प्रत्यय करना चाहिये कि इन पदार्थोंमें केवल दोष और दुःख ही भरे हुए हैं। रमणीय और सुखरूप दीखनेवाली वस्तुमें ही मन लगता है। यदि यह रमणीयता और सुखरूपता विषयोंसे हटकर परमात्मामें दिखायी देने लगे (जैसा कि वास्तवमें है) तो यही मन तुरंत विषयोंसे हटकर परमात्मामें लग जाय। यही वैराग्यका साधन है और वैराग्य ही मन जीतनेका एक उत्तम उपाय है। सच्चा वैराग्य तो संसारके इस दीखनेवाले स्वरूपका सर्वथा अभाव और उसकी जगह परमात्माका नित्य भाव प्रतीत होनेमें है, परंतु आरम्भमें नये साधकका मन वश करनेके लिये इस लोक और परलोकके समस्त पदार्थोंमें दोष और दुःख देखना चाहिये, जिससे मनका अनुराग उनसे हटे। श्रीभगवान्ने कहा है—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

(गीता १३।८)

‘इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें वैराग्य, अहंकारका त्याग, (इस शरीरमें) जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग (आदि) दुःख और दोष देखने चाहिये।’ इस प्रकार वैराग्यकी भावनासे मन वशमें हो सकता है। यह तो वैराग्यका संक्षिप्त साधन हुआ, अब कुछ अभ्यासपर विचार करें।

(२) नियमसे रहना

मनको वश करनेमें नियमानुवर्तितासे बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समयपर नियमानुसार होने चाहिये। प्रातःकाल बिछौनेसे उठकर रातको सोनेतक दिनभरके कार्योंकी एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिये कि जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने-आप स्वभावसे ही उस कार्यमें लग जाय। संसार-साधनमें तो

नियमानुवर्तितासे लाभ होता ही है, परमार्थमें भी इससे बड़ा लाभ होता है। अपने जिस इष्टस्वरूपके ध्यानके लिये प्रतिदिन जिस स्थानपर, जिस आसनपर, जिस आसनसे, जिस समय और जितने समय बैठा जाय, उसमें किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये। पाँच मिनटका भी नियमित ध्यान अनियमित अधिक समयके ध्यानसे उत्तम है। आज दस मिनट बैठे, कल आध घंटे, परसों बिलकुल लाँघा, इस प्रकारके साधनसे साधकको सिद्धि कठिनतासे मिलती है। जब पाँच मिनटका ध्यान नियमसे होने लगे तब दस मिनटका करे, परंतु दस मिनटका करनेके बाद किसी दिन भी नौ मिनट न होना चाहिये। इसी प्रकार स्थान, आसन, समय, इष्ट और मन्त्रका बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिये। इस तरहकी नियमानुवर्तितासे भी मन स्थिर होता है। नियमोंका पालन खाने-पीने, पहनने, सोने और व्यवहार करने—सभीमें होना चाहिये। नियम अपने अवस्थानुकूल शास्त्रसम्मत बना लेने चाहिये।

(३) मनकी क्रियाओंपर विचार

मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करना चाहिये। प्रतिदिन रातको सोनेसे पूर्व दिनभरके मनके कार्योंपर विचार करना उचित है। यद्यपि मनकी सारी उधेड़-बुनका स्मरण होना बड़ा कठिन है, परन्तु जितनी याद रहे उतनी ही बातोंपर विचार कर जो-जो संस्कार सात्त्विक मालूम दें, उनके लिये मनकी सराहना करना और जो-जो संकल्प राजसिक और तामसिक मालूम पड़ें, उनके लिये मनको धिक्कारना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकारके अभ्याससे मनपर सत्कार्य करनेके और असत्कार्य छोड़नेके संस्कार जमने लगेंगे, जिससे कुछ ही समयमें मन बुराइयोंसे बचकर भले-भले कार्योंमें लग जायगा। मन पहले भले कार्यवाला होगा, तब उसे वश करनेमें सुगमता होगी। कुसङ्गमें पड़ा हुआ बालक जबतक कुसङ्ग नहीं छोड़ता तबतक उसे कुसङ्गियोंसे बुरी सलाह मिलती रहती है। इससे उसका वशमें होना कठिन होता है, पर जब कुसङ्ग छूट जाता है तब उसे

बुरी सलाह नहीं मिल सकती; दिन-रात घरमें उसको माता-पिताके सदुपदेश मिलते हैं, वह भली-भली बातें सुनता है, तब फिर उसके सुधरकर माता-पिताके आज्ञाकारी होनेमें विलम्ब नहीं होता। इसी तरह यदि विषय-चिन्तन करनेवाले मनको कोई एक साथ ही सर्वथा विषयरहित करना चाहे तो वह नहीं कर सकता। पहले मनको बुरे चिन्तनसे बचाना चाहिये; जब वह परमात्मासम्बन्धी शुभ चिन्तन करने लगेगा, तब उसको वश करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

(४) मनके कहनेमें न चलना

मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। जबतक यह मन वशमें नहीं हो जाता तबतक इसे अपना परम शत्रु मानना चाहिये। जैसे शत्रुके प्रत्येक कार्यपर निगरानी रखनी पड़ती है, वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्यको सावधानीसे देखना चाहिये। जहाँ कहीं यह उल्टा-सीधा करने लगे, वहीं इसे धिक्कारना और पछाड़ना चाहिये। मनकी खातिर भूलकर भी नहीं करनी चाहिये।

यद्यपि यह बड़ा बलवान् है। कई बार इससे हारना होगा; पर साहस नहीं छोड़ना चाहिये। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मनको अवश्य जीत लेता है। इससे लड़नेमें एक विचित्रता है। यदि दृढ़तासे लड़ा जाय तो लड़नेवालेका बल दिनोंदिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है; इसलिये इससे लड़नेवाला एक-न-एक दिन इसपर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ-में-हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्यमें खूब सावधानीसे बर्तना चाहिये। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा; कभी फुसलावेगा; कभी लालच देगा, बड़े-बड़े अनोखे रंग दिखलावेगा, परंतु कभी इसके धोखेमें न आना चाहिये। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देनेकी आदत छूट जायगी। अन्तमें यह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञा-पालन करनेवाला विश्वासी सेवक बन जायगा। मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चौर। मनके मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और ॥

(५) मनको सत्कार्यमें संलग्न रखना

मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता, कुछ-न-कुछ काम इसको मिलना ही चाहिये; अतएव इसे निरन्तर काममें लगाये रखना चाहिये। निकम्मा रहनेसे ही इसे बुरी बातें सूझा करती हैं, अतएव जबतक नींद न आवे तबतक चुने हुए सुन्दर माङ्गलिक कार्योंमें इसे लगाये रखना चाहिये। जाग्रत् समयके सत्कार्योंके चित्र ही स्वप्नमें भी दिखायी देंगे।

(६) मनको परमात्मामें लगाना

श्रीभगवान् ने कहा है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(गीता ६।२६)

‘यह चञ्चल और अस्थिर मन जहाँ-जहाँ दौड़कर जाय वहाँ-वहाँसे हटाकर बारम्बार इसे परमात्मामें ही लगाना चाहिये !’

॥ मनको वशमें करनेका उपाय प्रारम्भ करनेपर

पहले-पहले तो यह इतना जोर दिखलाता है—अपनी चञ्चलता और शक्तिमत्तासे ऐसी पछाड़ लगाता है कि नया साधक घबड़ा उठता है, उसके हृदयमें निराशा-सी छा जाती है, परंतु ऐसी अवस्थामें धैर्य रखना चाहिये। मनका तो ऐसा स्वभाव ही है और हमें इसपर विजय पाना है, तब घबड़ानेसे थोड़े ही काम चलेगा? मुस्तैदीसे सामना करना चाहिये। आज न हुआ तो क्या, कभी-न-कभी तो वशमें होगा ही। इसलिये भगवान् ने कहा है—
 शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
 आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥

(गीता ६।२५)

‘धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त हो। धैर्ययुक्त बुद्धिसे मनको परमात्मामें स्थिर करके और किसी भी विचारको मनमें न आने दे।’

बड़ा धैर्य चाहिये; घबड़ाने, ऊबने या निराशा होनेसे काम नहीं होगा। झाड़ूसे घर साफ कर लेनेपर भी जैसे धूल जमी हुई-सी दीख पड़ती है, उसी प्रकार मनको

संस्कारोंसे रहित करते समय यदि मन और भी अस्थिर या अपरिच्छिन्न दीखे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पर इससे डरकर झाड़ू लगाना बंद नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि किसी प्रकारका भी वृथा चिन्तन या मिथ्या संकल्पोंको मनमें नहीं आने दिया जायगा। बड़ी चेष्टा, बड़ी दृढ़ता रखनेपर भी मन साधककी चेष्टाओंको कई बार व्यर्थ कर देता है, साधक तो समझता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ; पर मन देवता संकल्प-विकल्पोंकी पूजामें लग जाते हैं। जब साधक मनकी ओर देखता है तो उसे आश्चर्य होता है कि यह क्या हुआ। इतने नये-नये संकल्प, जिनकी भावना भी नहीं की गयी थी, कहाँसे आ गये ? बात यह होती है कि साधक जब मनको निर्विषय करना चाहता है तब संसारके नित्य अभ्यस्त विषयोंसे मनको फुरसत मिल जाती है, उधर परमात्मामें लगनेका इस समयतक उसे पूरा अभ्यास नहीं होता। इसलिये फुरसत पाते ही वह उन पुराने दृश्योंको (जो संस्काररूपसे उसपर अङ्कित

हो रहे हैं) सिनेमाके फिल्मकी भाँति क्षण-क्षणमें एकके बाद एक उलटने लग जाता है। इसीसे उस समय ऐसे संकल्प मनमें उठते हुए मालूम होते हैं, जो संसारका काम करते समय याद भी नहीं आते थे। मनकी ऐसी प्रबलता देखकर साधक स्तम्भित-सा रह जाता है, पर कोई चिन्ता नहीं। जब अभ्यासका बल बढ़ेगा तब वह संसारसे फुरसत मिलते ही तुरंत परमात्मामें लग जायगा। अभ्यास दृढ़ होनेपर तो यह परमात्माके ध्यानसे हटाये जानेपर भी न हटेगा। मन चाहता है सुख। जबतक इसे वह सुख नहीं मिलता, विषयोंमें सुख दीखता है; तबतक यह विषयोंमें रमता है। जब अभ्याससे विषयोंमें दुःख और परमात्मामें परम सुख प्रतीत होने लगेगा तब यह स्वयं ही विषयोंको छोड़कर परमात्माकी ओर दौड़ेगा; परंतु जबतक ऐसा न हो तबतक निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। यह मालूम होते ही कि मन अन्यत्र भागा है, तत्काल इसे पकड़ना चाहिये। इसको पकड़े चोरकी भाँति भागनेका

बड़ा अभ्यास है, इसलिये ज्यों ही यह भागे त्यों ही इसे पकड़ना चाहिये।

जिस-जिस कारणसे मन सांसारिक पदार्थोंमें विचरे, उस-उससे रोककर परमात्मामें स्थिर करे। मनपर ऐसा पहरा बैठा दे कि यह भाग ही न सके। यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर इसे भागनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय, परंतु यह जहाँ जाय वहींपर परमात्माकी भावना की जाय, वहींपर इसे परमात्माके स्वरूपमें लगाया जाय। इस उपायसे भी मन स्थिर हो सकता है।

(७) एक तत्त्वका अभ्यास करना

योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।

(समाधिपाद ३२)

चित्तका विक्षेप दूर करनेके लिये पाँच तत्त्वोंमेंसे किसी एक तत्त्वका अभ्यास करना चाहिये। एक तत्त्वके अभ्यासका अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तुकी या किसी मूर्तिविशेषकी तरफ एक दृष्टिसे देखने

रहना, जबतक आँखोंकी पलक न पड़े या आँखोंमें जल न आ जाय, तबतक उसे एक ही चिह्नकी तरफ देखते रहना चाहिये, चिह्न धीरे-धीरे छोटा करते रहना चाहिये। अन्तमें उस चिह्नको बिलकुल ही हटा देना चाहिये। 'दृष्टिः स्थिरा यत्र विनावलोकनम्'—अवलोकन न करनेपर भी दृष्टि स्थिर रहे। ऐसा हो जानेपर चित्तविक्षेप नहीं रहता। इस प्रकार प्रतिदिन आध-आध घंटे भी अभ्यास किया जाय तो मनके स्थिर होनेमें अच्छी सफलता मिल सकती है। इसी प्रकार दोनों भ्रुवोंके बीच दृष्टि जमाकर जबतक आँखोंमें जल न आ जाय तबतक देखते रहनेका अभ्यास किया जाता है, इससे भी मन निश्चल होता है, इसीको त्राटक कहते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकारके अभ्यासमें नियमितरूपसे जो जितना अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा।

(८) नाभि या नासिकाग्रमें दृष्टि-स्थापन करना
नित्य नियमपूर्वक पद्मासन या सुखासनसे सीधा

बैठकर नाभिमें दृष्टि जमाकर जबतक पलक न पड़े तबतक एक मनसे देखते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे शीघ्र ही मन स्थिर होता है। इसी प्रकार नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर बैठनेसे भी चित्त निश्चल हो जाता है। इससे ज्योतिके दर्शन भी होते हैं।

(९) शब्द श्रवण करना

कानोंमें अँगुली देकर शब्द सुननेका अभ्यास किया जाता है। इसमें पहले भौरोंके गुंजार अथवा प्रातःकालीन पक्षियोंके चुचुहाने-जैसा शब्द सुनायी देता है, फिर क्रमशः घुँघुरू, शङ्ख, घण्टा, ताल, मुरली, भेरी, मृदङ्ग, नफीरी और सिंहगर्जनके सदृश शब्द सुनायी देते हैं। इस प्रकार दस प्रकारके शब्द सुनायी देने लगनेके बाद दिव्य ॐ शब्दका श्रवण होता है, जिससे साधक समाधिको प्राप्त हो जाता है। यह भी मनके निश्चल करनेका उत्तम साधन है।

(१०) ध्यान या मानस-पूजा

सब जगह भगवान्‌के किसी नामको लिखा हुआ

समझकर बारम्बार उस नामके ध्यानमें मन लगाना चाहिये अथवा भगवान्‌के किसी स्वरूप-विशेषकी अन्तरिक्षमें मनसे कल्पना कर उसकी पूजा करनी चाहिये। पहले भगवान्‌की मूर्तिके एक-एक अवयवका अलग-अलग ध्यान कर फिर दृढ़ताके साथ सारी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। उसीमें मनको अच्छी तरह स्थिर कर देना चाहिये। मूर्तिके ध्यानमें इतना तन्मय हो जाना चाहिये कि संसारका भान ही न रहे। फिर कल्पनाप्रसूत सामग्रियोंसे भगवान्‌की मानसिक पूजा करनी चाहिये। प्रेमपूर्वक की हुई नियमित भगवदुपासनासे मनको निश्चल करनेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

(११) मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षाका व्यवहार योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि एक उपाय यह भी बतलाते हैं—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।

(समाधिपाद ३३)

‘सुखी मनुष्योंसे प्रेम, दुःखियोंके प्रति दया, पुण्यात्माओंके प्रति प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उदासीनताकी भावनासे चित्त प्रसन्न होता है।’

(क) जगत्के सारे सुखी जीवोंके साथ प्रेम करनेसे चित्तका ईर्ष्या-मल दूर होता है, डाहकी आग बुझ जाती है। संसारमें लोग अपनेको और अपने आत्मीय स्वजनोंको सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे उन लोगोंको अपने प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं, यदि यही प्रियभाव सारे संसारके सुखियोंके प्रति अर्पित कर दिया जाय तो कितने आनन्दका कारण हो। दूसरेको सुखी देखकर जलन पैदा करनेवाली वृत्तिका नाश हो जाय।

(ख) दुःखी प्राणियोंके प्रति दया करनेसे पर-अपकाररूप चित्त-मल नष्ट होता है। मनुष्य अपने कष्टोंको दूर करनेके लिये किसीसे भी पूछनेकी आवश्यकता नहीं समझता, भविष्यमें कष्ट होनेकी सम्भावना होते ही पहलेसे उसे निवारण करनेकी चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत्के सारे

जीवोंके साथ हो जाय तो अनेक लोगोंके दुःख दूर हो सकते हैं। दुःखपीड़ित लोगोंके, दुःख दूर करनेके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेकी प्रबल भावनासे मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

(ग) धार्मिकोंको देखकर हर्षित होनेसे दोषारोपनामक मनका असूया-मल नष्ट होता है, साथ ही धार्मिक पुरुषकी भाँति चित्तमें धार्मिक वृत्ति जाग्रत हो उठती है। असूयाके नाशसे चित्त शान्त होता है।

(घ) पापियोंके प्रति उपेक्षा करनेसे चित्तका क्रोधरूप मल नष्ट होता है। पापोंका चिन्तन न होनेसे उनके संस्कार अन्तःकरणपर नहीं पड़ते। किसीसे भी घृणा नहीं होती। इससे चित्त शान्त रहता है।

इस प्रकार इन चारों भावोंके बारम्बार अनुशीलनसे चित्तकी राजस, तामस वृत्तियाँ नष्ट होकर सात्त्विक वृत्तिका उदय होता है और उससे चित्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही एकाग्रता लाभ कर है।

(१२) सद्ग्रन्थोंका अध्ययन

भगवान्के परम रहस्यमयसम्बन्धी परमार्थ-ग्रन्थोंके पठन-पाठनसे भी चित्त स्थिर होता है। एकान्तमें बैठकर उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण आदि ग्रन्थोंका अर्थसहित अनुशीलन करनेसे वृत्तियाँ तदाकार बन जाती हैं। इससे मन स्थिर हो जाता है।

(१३) प्राणायाम

समाधिसे भी मन रुकता है। समाधि अनेक तरहकी होती है। प्राणायाम समाधिके साधनोंका एक मुख्य अङ्ग है। योगदर्शनमें कहा गया है—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

(समाधिपाद ३४)

नासिकाके छेदोंसे अन्तरकी वायुको बाहर निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है और प्राणवायुकी गति रोक देनेको विधारण कहते हैं। इन दोनों उपायोंसे भी चित्त स्थिर होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

(४।२९)

‘कई अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, कई प्राणवायुमें अपानवायुको होमते हैं और कई प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणायाम किया करते हैं।’

इसी तरह योगसम्बन्धी ग्रन्थोंके अतिरिक्त महाभारत, श्रीमद्भागवत और उपनिषदोंमें भी प्राणायामका यथेष्ट वर्णन है। श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम ही प्राणायाम है। मनु महाराजने कहा है—

दहान्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।

तथेन्द्रियाणां दहान्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

‘अग्निसे तपाये जानेपर जैसे धातुका मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायुके निग्रहसे इन्द्रियोंके सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।’

प्राणोंको रोकनेसे ही मन रुकता है। इनका एक साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, मन सवार है, तो प्राण

वाहन है। एकको रोकनेसे दोनों रुक जाते हैं। प्राणायामके सम्बन्धमें योगशास्त्रमें अनेक उपदेश मिलते हैं, परंतु वे बड़े ही कठिन हैं। योगसाधनमें अनेक नियमोंका पालन करना पड़ता है। योगाभ्यासके लिये बड़े ही कठोर आत्मसंयमकी आवश्यकता है। आजकलके समयमें तो कई कारणोंसे योगका साधन एक प्रकारसे असाध्य ही समझना चाहिये। यहाँपर प्राणायामके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा जाता है कि बायीं नासिकासे बाहरकी वायुको अन्तरमें ले जाकर स्थिर रखनेको पूरक कहते हैं, दाहिनी नासिकासे अन्तरकी वायुको बाहर निकालकर बाहर स्थिर रखनेको रेचक कहते हैं और जिसमें अन्तरकी वायु बाहर न जा सके और बाहरकी वायु अन्तरमें प्रवेश न कर सके, इस भावसे प्राणवायु रोक रखनेको कुम्भक कहते हैं। इसीका नाम प्राणायाम है।

साधारणतः चार बार मन्त्र जपकर पूरक, सोलह बारके जपसे कुम्भक और आठ बारके जपसे रे-

विधि है, परन्तु इस सम्बन्धमें उपयुक्त सदुक्त आज्ञा बिना कोई कार्य नहीं करना चाहिये। योगाभ्यासमें देखा-देखी करनेसे उलटा फल हो सकता है। 'देखादेखी साथै जोग। छीजै काया बाढ़ै रोग ॥' पर यह स्मरण रहे कि प्राणायाम मनको रोकनेका एक बहुत ही उत्तम साधन है।

(१४) श्वासके द्वारा नाम-जप

मनको रोककर परमात्मामें लगानेका एक अत्यन्त सुलभ और आशङ्करहित उपाय और है, जिसका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं, वह है—आने-जानेवाले श्वास-प्रश्वासकी गतिपर ध्यान रखकर श्वासके द्वारा श्रीभगवान्‌के नामका जप करना। यह अभ्यास बैठते-उठते, चलते-फिरते, सोते-खाते हर समय प्रत्येक अवस्थामें किया जा सकता है। इसमें श्वास जोर-जोरसे लेनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। श्वासकी साधारण गति के साथ-ही-साथ नामका जप किया जा सकता है। य रखनेसे ही मन रुककर नामका जप हो

सकता है। श्वासके द्वारा नामका जप करते समय चित्तमें इतनी प्रसन्नता होनी चाहिये कि मानो मन आनन्दसे उछला पड़ता हो। आनन्दरससे छका हुआ अन्तःकरणरूपी पात्र मानो छलका पड़ता हो। यदि इतने आनन्दका अनुभव न हो तो आनन्दकी भावना ही करनी चाहिये। इसीके साथ भगवान्को अपने अत्यन्त समीप जानकर उनके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। मानो उनके समीप होनेका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है, इस भावसे संसारकी सुधि भुलाकर मनको परमात्मामें लगाना चाहिये।

(१५) ईश्वर-शरणागति

ईश्वर-प्रणिधानसे भी मन वशमें होता है। अनन्य भक्तिसे परमात्माकी शरण होना ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। 'ईश्वर' शब्दसे यहाँपर परमात्मा और उनके भक्त दोनों ही समझे जा सकते हैं। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति,' 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्', 'तन्मयाः'—इन श्रुति और भक्तिशास्त्रके सिद्धान्त-वचनों

और ज्ञानी भक्तोंकी एकता सिद्ध होती है। श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके प्रभाव और चरित्रके चिन्तनमात्रसे चित्त आनन्दसे भर जाता है। संसारका बन्धन मानो अपने-आप टूटने लगता है। अतएव भक्तोंका सङ्ग करने, उनके उपदेशोंके अनुसार चलने और भक्तोंकी कृपाको ही भगवत्प्राप्तिका प्रधान उपाय समझनेसे भी मनपर विजय प्राप्त की जा सकती है। भगवान् और सच्चे भक्तोंकी कृपासे सब कुछ हो सकता है।

(१६) मनके कार्योंको देखना

मनको वशमें करनेका एक बड़ा उत्तम साधन है—‘मनसे अलग होकर निरन्तर मनके कार्योंको देखते रहना।’ जबतक हम मनके साथ मिले हुए हैं तभीतक मनमें इतनी चञ्चलता है। जिस समय हम मनके द्रष्टा बन जाते हैं, उसी समय मनकी चञ्चलता मिट जाती है। वास्तवमें तो मनसे हम सर्वथा भिन्न ही हैं। किस समय मनमें क्या संकल्प होता है? इसका पूरा ज्ञान हमें रहता है। बम्बईमें बैठे हुए एक मनुष्यके मनमें

कलकत्तेके किसी दृश्यका संकल्प होता है, इस बातको वह अच्छी तरह जानता है। यह निर्विवाद बात है कि जानने या देखनेवाला जाननेकी या देखनेकी वस्तुसे सदा अलग होता है। आँखको आँख नहीं देख सकती; इस न्यायसे मनकी बातोंको जो जानता या देखता है, वह मनसे सर्वथा भिन्न है। भिन्न होते हुए भी वह अपनेको मनके साथ मिला देता है, इसीसे उसका जोर पाकर मनकी उद्वेगता बढ़ जाती है। यदि साधक अपनेको निरन्तर अलग रखकर मनकी क्रियाओंका द्रष्टा बनकर देखनेका अभ्यास करे तो मन बहुत ही शीघ्र संकल्पपरहित हो सकता है।

(१७) भगवन्नाम-कीर्तन

मग्न होकर उच्च स्वरसे परमात्माका नाम और गुण-कीर्तन करनेसे भी मन परमात्मामें स्थिर हो सकता है। भगवान् चैतन्यदेवने तो मनको निरुद्धकर परमात्मामें लगानेका यही परम साधन बतलाया है। भक्त जब अपने प्रभुका नाम-कीर्तन करते-करते गदगद

रोमाञ्चित और अश्रुपूर्ण-लोचन होकर प्रेमावेशमें अपने-आपको सर्वथा भुलाकर केवल प्रेमिक परमात्माके रूपमें तन्मयता प्राप्त कर लेता है तब भला मनको जीतनेमें और कौन-सी बात बच रहती है ? अतएव प्रेमपूर्वक परमात्माका नाम-कीर्तन करना मनपर विजय पानेका एक अत्युत्तम साधन है ।

इस प्रकारसे मनको रोककर परमात्मामें लगानेके अनेक साधन और युक्तियाँ हैं । इनमेंसे या अन्य किसी भी युक्तिसे किसी प्रकारसे भी मनको विषयोंसे हटाकर परमात्मामें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये । मनके स्थिर किये बिना अन्य कोई भी अवलम्बन नहीं । जैसे चञ्चल जलमें रूप विकृत दीख पड़ता है, उसी प्रकार चञ्चल चित्तमें आत्माका यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित नहीं होता । परंतु जैसे स्थिर जलमें प्रतिबिम्ब जैसा होता है वैसा ही दीखता है, इसी प्रकार केवल स्थिर मनसे ही आत्माका थार्थ स्वरूप स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है । अतएव प्राणपणसे स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिये । अबतक जो

इस मनको स्थिर कर सके हैं, वे ही श्यामसुन्दरके नित्यप्रसन्न नवीन नील-नीरद प्रफुल्ल मुखारविन्दका दर्शन कर अपना जन्म और जीवन सफल कर सके हैं। जिसने एक बार भी उस 'अनूपरूपशिरोमणि' के दर्शनका संयोग प्राप्त कर लिया वही धन्य हो गया। उसके लिये उस सुखके सामने और सारे सुख फीके पड़ गये। उस लाभके सामने और सारे लाभ नीचे हो गये।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
 'जिस लाभको पा लेनेपर उससे अधिक और कोई-सा लाभ भी नहीं जँचता।' यही योगसाधनका चरम फल है अथवा यही परम योग है।

